गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर
[GURUDEVA RABINDRANATH TAGORE]

जीवन-वृत्त
(LIFE-SKETCH)

आधुनिक भारत का निर्माण करने में जिन विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है उनमें **स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी** और **महर्षि अरविन्द** के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों ने भारतीय शिक्षा को अपने विचारों से प्रभावित किया है। टैगोर ने 'विश्व भारती' की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी विचारधारा का सूत्रपात किया। **महात्मा गाँधी** 'नवीन शिक्षा' की योजना को राष्ट्र के लिए अपनी सर्वोत्तम देन समझते थे। इस अध्याय में हम रबीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

प्रसिद्ध धर्म सुधारक **महर्षि देवेन्द्रनाथ** के सुपुत्र कविवर गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर न केवल उच्च कोटि के कवि एवं विचारक थे वरन् एक महान् शिक्षाशास्त्री भी थे। टैगोर का जन्म कलकत्ता में सन् 1861 में 6 मई को हुआ था और साहित्य, कला तथा दर्शन के क्षेत्र में अपनी अनुपम उपलब्धि से भारत के मस्तिष्क को ऊँचा करके एवं संसार से भारत के योगदान को अनुपेक्षणीय सिद्ध करके सन् 1941 में वह गोलोकवासी हुए। टैगोर परिवार अत्यन्त समृद्ध था। सम्पूर्ण बंगाल में यह परिवार अपनी कलाप्रियता, विद्याव्यसन एवं संगीत प्रेम के लिए विख्यात था। टैगोर के पिता देशभक्त, विद्वान एवं धर्म-परायण थे। रबीन्द्रनाथ महर्षि देवेन्द्रनाथ के सबसे छोटे पुत्र थे।

समृद्ध परिवार में जन्म लेने के कारण टैगोर का बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यार से बीता। इन्हें सबसे पहले ओरियण्टल सेमेनरी स्कूल में भर्ती किया गया। इस स्कूल में वे कुछ दिन पढ़े किन्तु यहाँ पर उनका मन नहीं लगा। अत: कुछ महीनों के बाद इन्हें वहाँ से हटा लिया गया और नार्मल स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। इस नार्मल स्कूल में टैगोर परम्परागत ब्रिटिशकालीन शिक्षा-प्रणाली के सम्पर्क में आए और उन्हें यहाँ पर इतने कटु अनुभव हुए कि उसी समय उन्होंने शिक्षा में सुधार करने का संकल्प ले लिया और आगे चलकर शान्ति निकेतन की स्थापना द्वारा अपने संकल्प को मूर्त रूप प्रदान किया।

विद्यालय में तो वे नाममात्र को गये। घर में पैसे की कमी नहीं थी। अत: प्रारम्भ में उनकी शिक्षा घर पर जितनी अच्छी हुई उतनी विद्यालय में नहीं। उन्हें घर पर ही संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, चित्रकला, संगीत आदि की शिक्षा प्राप्त हुई और इन विषयों को पढ़ाने के लिए अलग-अलग शिक्षकों की व्यवस्था की गई थी। सन् 1878 में टैगोर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत गये। इनके साथ इनके भाई भी इंग्लैण्ड गये। इंग्लैण्ड में वे ब्राइटन विद्यालय में भर्ती हुए किन्तु इस विद्यालय में वे अधिक दिन न रह सके। यहाँ से वे लन्दन के लिए रवाना हो गये किन्तु लन्दन में किसी विद्यालय में प्रवेश प्राप्त नहीं किया। इस प्रकार इंग्लैण्ड में उनकी विद्यालयी शिक्षा कुछ न हो सकी, अत: वे सन् 1880 में स्वदेश लौट आये। सन् 1881 में पुन: इंग्लैण्ड गये और अब की बार कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये। इंग्लैण्ड पहुँचने पर उनका विचार बदल गया और कानून की शिक्षा प्राप्त करने का विचार उन्होंने त्याग दिया। इसके परिणामस्वरूप सन् 1881 में वे पुन: भारत लौट आये।

बोलपुर के समीप शान्ति निकेतन की स्थापना सन् 1901 में करने के बाद उन्होंने शिक्षा-साहित्य व समाज की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया। उन्होंने राजनीति में भी सफलतापूर्वक प्रवेश किया और सन् 1919 तक वे राजनीतिक कार्यों में रुचि लेते रहे। बाद में उनकी रुचि राजनीति में कम होती गई।

राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक कार्यों को करते हुए भी उनकी साहित्य-साधना अनवरत रूप से चलती रही और महाकवि एवं साहित्यकार के रूप में उनका व्यक्तित्व निखरता गया। टैगोर विश्वकवि थे और गीताञ्जलि उनका विश्वविख्यात ग्रन्थ है। 'गीताञ्जलि' टैगोर की वह अमर कृति है जिसने उन्हें देश-विदेश

में महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इस कृति का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है। इसमें जिन गीतों का संग्रह है वे दिव्य भावनाओं से पूर्ण हैं। इन गीतों में इतनी सादगी है कि पाठक का हृदय अलौकिक आनन्द व प्रकाश से भर जाता है। गीतों में असीम उल्लास और आनन्द भरा है। गीताञ्जलि के प्रथम गीत 'वन्दना' (आमार माथा नत करेदाओ) की प्रथम दो पंक्तियों में कवि कहता है ''मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तक झुका दे। प्रभू ! मेरे समस्त अहंकार को आँखों के पानी में डुबा दे।''

लघुता के सामीप्य की इच्छा करने वाला कवि महानता की चरम सीमा तक पहुँच गया। इस ग्रन्थ से सारा पश्चिम प्रभावित हुआ। सन् 1913 के नवम्बर मास में उन्हें प्रसिद्ध 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। एक महीने बाद ही कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट्. की सम्मानार्थ उपाधि से विभूषित किया और सन् 1915 में भारत सरकार ने उन्हें 'नाइट' बनाकर सम्मानित किया। सन् 1920 से 1930 तक उन्होंने यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। इन देशों में अनेक स्थानों पर उनके भाषण हुए। बर्ट्रेण्ड रसेल जैसे महान् विचारक भी उनसे प्रभावित थे। सन् 1941 ई. में इस महान् साहित्यकार एवं शिक्षाशास्त्री का देहावसान हो गया।

टैगोर का जीवन-दर्शन
(TAGORE'S PHILOSOPHY OF LIFE)

टैगोर परमपुरुष में आस्था रखते थे और विश्व की सर्वोच्च शक्ति के रूप में उस महापुरुष को स्वीकार करते थे। उनके लिए परमपुरुष सत्यम् शिवम् एवं अद्वैतम् का प्रतीक है। अद्वैतवादी तथा ब्रह्मवादी होते हुए भी वे सर्वोच्च सत्ता को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। एक समय वे परम-सत्य को सूक्ष्म मानते हैं तो दूसरे समय वे उसे उपास्य एवं प्रिय स्थूल मानते हैं। वे प्रेम के रहस्य को समझकर उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हैं। सृष्टि में सामंजस्य है। व्यक्तित्व में भी सामंजस्य होना चाहिए।

टैगोर मानव में आस्था रखते थे और उन्हें उच्च कोटि का मानवतावादी कहा जा सकता है। एक महाकवि होने के नाते उन्होंने संवेगों एवं स्थायी भावों के दमन का परामर्श नहीं दिया है वरन् व्यक्ति की सभी शक्तियों के सामंजस्यपूर्ण विकास का समर्थन किया है।

राष्ट्रीय सृजन एवं सामाजिक सुधार में वे गाँवों को प्रमुखतम स्थान देते थे। देश-सेवा का महत्त्वपूर्ण कार्य ग्राम-सेवा है किन्तु यह ग्राम-सेवा ग्रामीणों पर कृपा के रूप में नहीं होनी चाहिए। सेवा में भी ग्रामीणों को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। ग्रामों तथा शहरों के बीच की खाई को पाटना चाहिए। जाति-पाँति एवं अस्पृश्यता का वे भी विरोध करते थे। बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा कस्बों के रहन-सहन का वे समर्थन करते थे।

टैगोर व्यक्ति के सम्मान एवं उसकी स्वतन्त्रता में आस्था रखते थे। वे धर्म, भाषा तथा लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव स्वीकार नहीं करते थे। उनका कथन था कि सहयोग से व्यक्ति एवं राष्ट्र की निर्धनता समाप्त हो सकती है। पराधीनता की बेड़ी को वे काटना चाहते थे किन्तु उनका कथन था कि यदि देश आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से स्वावलम्बी एवं स्वतन्त्र हो जायगा तो राजनीतिक स्वतन्त्रता अपने आप प्राप्त हो जायगी।

विश्वकवि रबीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि एवं कलाकार होने के साथ-साथ शिक्षक एवं दार्शनिक थे। उनका व्यापक जीवन-दर्शन उपनिषदों के चिन्तन एवं मनन के परिणामस्वरूप विकसित हुआ था। उपनिषदों में विवेचित विश्वबोध की भावना को टैगोर ने आत्मसात् किया था। उन्हें प्रकृति में अनन्त की सत्ता का आभास होता है। उन्हें सम्पूर्ण जीव जगत् में वही एक सत्ता दिखाई देती है। इसलिए मानव मात्र की एकता में उनका अनन्त विश्वास है। उन्होंने कहा—''मानवता को पहले अधिक विस्तृत भावुकतापूर्ण और शक्तिशाली एकता की अनुभूति करना है।'' उन्हें इस विश्व की बाह्य विविधताओं के बीच एकता नजर आती है और इसलिए विश्व के अन्तराल में झाँक कर वे एक आध्यात्मिक यथार्थवाद की अनुभूति करते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर पूर्णता का अनन्त आदर्श है और मनुष्य उस पूर्णता को प्राप्त करने की शाश्वत् प्रक्रिया है। अनन्त का ज्ञान और उसकी शक्ति आकाश के तारों की अपेक्षा मनुष्य की आत्मा में अधिक उपलब्ध होती है। धरती के मानव, मात्र ईश्वरीय सितार के स्वर्णतार हैं। अतः मानव हृदय में सतत् स्पन्दित पारस्परिक सहानुभूति तथा बन्धुत्व की भावना सभी बाह्य भिन्नताओं से कहीं महत्तर है।

टैगोर के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन में मानव-कल्याण को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वे लिखते हैं—''इसके साथ ही मानव करुणा के प्रति भी मुझे लालसा रही तथा स्वाभाविक रूप से मैं अपने ढंग से अभिव्यक्ति देता रहा हूँ।'' टैगोर का मानवतावादी दर्शन समस्त शैक्षिक-दर्शन में प्रतीत होता है। टैगोर भारतीय प्रकृतिवाद के प्रणेता कहे जाते हैं परन्तु भौतिकवादी प्रकृतिवादी लीक को छोड़कर उन्होंने आध्यात्मिक प्रकृतिवाद का आश्रय लिया। रूसो के समान उनके विचार तत्कालिक कृत्रिम सामाजिक परम्पराओं के प्रति एक आक्रोश एवं प्रतिक्रिया दिखाई देते हैं। कवि होने के कारण उनके शैक्षिक विचारों में कल्पना की रंगीनता है, आदर्श दैवी लोक का स्वप्न है तथा सुन्दर जीवन की झाँकी है। उन्होंने अपने विचारों को विश्व भारती के रूप में साकार किया। विश्व भारती का मानववाद, विश्वएकता, सृजनात्मकता, कलात्मक अभिव्यक्ति, स्वतन्त्रता, सौन्दर्य बोध, प्राकृतिक जीवन आदि आदर्श भारत की अन्य शिक्षण-संस्थाओं के लिए प्रकाश-स्तम्भ बन गए हैं। आज भी भारत की अनेक संस्थाएँ विश्व भारती के आदर्शों का अनुकरण करती हैं तथा इन्हें अपनाने का प्रयत्न करती हैं।

टैगोर की सबसे बड़ी देन उनका समन्वयवाद है। भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय, पूर्व-पश्चिम के बीच समन्वय आदि विचार आज विश्वभर में जोर पकड़ते जा रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए शिक्षा का विचार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आया, जबकि टैगोर ने इसका आरम्भ विश्व भारती में बीसवीं सदी के आरम्भ में ही कर दिया था। भारतीय शिक्षा-दर्शन पर टैगोर की अमिट छाप दिखाई देती है।

टैगोर का शिक्षा-दर्शन
(TAGORE'S PHILOSOPHY OF EDUCATION)

टैगोर ने शिक्षा के सिद्धान्तों की खोज अपने अनुभवों से की है। 'विश्व भारती' के संस्थापक के रूप में वे एक व्यावहारिक शिक्षाशास्त्री होने का परिचय देते हैं। शिक्षाशास्त्र में उनकी देनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे एक उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्री थे, यद्यपि उन्होंने अध्यापन का पेशा कभी नहीं ग्रहण किया।

टैगोर ने भारतीय शिक्षा में एक नये प्रयोग का सूत्रपात किया। वे भारतीय आदर्शों से प्रभावित तो थे ही, पाश्चात्य विचारों के प्रति भी वे जाग्रत थे। उन्होंने अपने शैक्षिक प्रयोग को प्रारम्भ करने से पहले **रूसो** के विचारों से, **फ्रोबेल** के किण्डरगार्टन स्कूल से तथा **डीवी** की शैक्षिक विचारधारा से अवश्य परिचय प्राप्त किया होगा किन्तु इनके सिद्धान्तों को वे सर्वत्र सत्य मानने को तत्पर न हुए होंगे। इस प्राक्कल्पना का आधार यह है कि उन्होंने अपने शान्ति निकेतन में किसी पाश्चात्य शैक्षिक विचारधारा का अन्धानुकरण नहीं किया और न ही अपने विद्यालय को किसी पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली पर आधारित किया। उन्होंने अपने शिक्षा-सिद्धान्तों की स्वयं खोज की थी। उनके शैक्षिक विचार उनके स्वानुभव पर आधारित थे।

उनकी प्रज्ञा इतनी तीव्र थी कि वे अपनी बुद्धि के सहारे किसी विषय की तह में बैठ सकते थे। किसी पदार्थ की मूल प्रकृति एवं उनके वास्तविक स्वरूप का पता लगा लेने में वे सिद्धहस्त थे। उनकी बुद्धि का ही यह कमाल था कि जिस समय भारत शिक्षा के क्षेत्र में पश्चिम का अनुकरण करने में लगा हुआ था, उस समय वे आधुनिक भारतीय जीवन के अनुकूल एक शिक्षा-प्रणाली की खोज कर रहे थे। जिस समय भारतीय विश्वविद्यालयों में पश्चिमी सिद्धान्तों को दिव्य मानकर आत्मसात् किया जा रहा था, उस समय वे शिक्षा के नये सिद्धान्तों का पता लगाने में जुटे हुए थे।

टैगोर प्रकृतिवादी थे, किन्तु उनका प्रकृतिवाद **रूसो** के प्रकृतिवाद से भिन्न था। **रूसो** ने समाज को सभी बुराइयों की जड़ मानकर समाज और सामाजिक जीवन का घोर विरोध किया था, किन्तु टैगोर के हृदय में समाज के प्रति प्रेम व दया का भाव था। वे समाज का उन्नयन करना चाहते थे और अतीत भारत की आत्मा को आधुनिक भारत की आत्मा में देखना चाहते थे। वे समाज को प्राकृतिक नियमों पर आधारित तो करना चाहते थे, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकता एवं अतीत की धार्मिकता एवं नैतिकता से विहीन समाज को अच्छा नहीं समझते थे।

टैगोर के शिक्षा-दर्शन में रहस्यवाद भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है, किन्तु उनका यह रहस्यवाद स्वस्थ एवं सबल तथा विस्तृत था, जबकि **फ्रोबेल** का रहस्यवाद केवल शैशव तक सीमित था। टैगोर ने रहस्यवाद को

जीवन की यथार्थ भूमि पर आधारित किया और इसका विस्तार करके शिक्षा के सभी स्तरों पर इसे लागू किया। फ्रोबेल ने अपना ध्यान पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर केन्द्रित किया था और पेस्टालाजी ने प्राथमिक स्तर पर, किन्तु टैगोर ने सभी शैक्षिक स्तरों के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों से सिद्धान्तों की चर्चा करके फ्रोबेल और पेस्टालाजी को पीछे छोड़ दिया।

टैगोर शिक्षा के क्षेत्र में आत्मवादी थे। प्रायः प्रकृतिवाद अध्यात्मवाद का विरोध करता है किन्तु टैगोर का प्रकृतिवाद एकांगी नहीं था, इसीलिए उनके प्रकृतिवाद की अनिवार्य परिणति आदर्शवाद में हुई और वे बालकों में उदात्त भावनाओं को जाग्रत करके उन्हें आध्यात्मिक भूमि पर लाना चाहते थे। आध्यात्मिकता की बात करके टैगोर ने भारत के अतीत का सम्मान किया है और उसी पर वर्तमान को आधारित करना चाहा है।

टैगोर उच्च कोटि के मानवतावादी थे और मानव-व्यक्तित्व की गरिमा में उनका विश्वास था। वे मानव-जाति का उद्धार करना चाहते थे और मनुष्य के मूल्य को गिराने का घोर विरोध करते थे। उन्हें बड़ा दुःख था कि मानवीय मूल्यों का तिरस्कार हो रहा है और वर्तमान युग में मनुष्य का जीवन सस्ता होता जा रहा है। उनका विश्वास था कि यह दुनिया मूल रूप से मानवीय दुनिया है। वे जानते थे कि ईश्वर को भी वहीं पर खोजना चाहिए जहाँ पर किसान हल जोत रहा हो।

टैगोर अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के बहुत बड़े समर्थक थे और वे बालकों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करना चाहते थे। वे अपने राष्ट्र से बहुत प्रेम करते थे और भारतीय राष्ट्र की परिस्थितियों को सुधारना चाहते थे, किन्तु उनका राष्ट्र-प्रेम संकीर्ण नहीं था। उनकी देश-भक्ति और उनका राष्ट्र-प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधक नहीं था। वे समस्त विश्व को एक समझते थे और हमें इस योग्य बनाना चाहते थे कि हम विश्व-नागरिकता के प्रति सम्मान का भाव रख सकें।

शैक्षिक विचारों का आधार
(BASES OF EDUCATIONAL IDEAS)

टैगोर के शैक्षिक विचारों का पहला आधार दार्शनिक है। कौन-सा दर्शन ग्राह्य है और कौन-सा नहीं तथा शिक्षा दर्शन में किसी दार्शनिक के विचारों को उसके तत्व मीमांसीय, ज्ञान मीमांसीय तथा मूल्य मीमांसीय पद्धति से परखा जाता है। टैगोर के दार्शनिक विचारों के आधार स्रोत पर पहले विचार किया जा चुका है।

विचारों को प्रभावित करने का दूसरा आधार मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि माना गया है। क्योंकि लक्ष्यों को व्यवहार में परिवर्तित करने का कार्य मनोविज्ञान करता है। ज्ञान की कौन-सी शाखा किस स्तर पर ठीक है, बच्चे को कितना पढ़ाया जाए, किस विधि से पढ़ाया जाए, कौन-सी परिस्थितियाँ पैदा की जाएँ, यह सब काम मनोविज्ञान की परिधि में आता है।

शिक्षा विचारों को प्रभावित करने का तीसरा आधार सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, जिसके आधार पर शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षा व्यवस्था बनती है।

शिक्षा के लक्ष्य को राजनीति भी प्रभावित करती है। जैसी राजनीतिक व्यवस्था होती है उसी प्रकार के शिक्षा के उद्देश्य बनते हैं और विचार आरोपित किये जाते हैं।

विचारों को प्रभावित करने का पाँचवाँ आधार वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है। समाज में जो नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार होते हैं, वह व्यक्ति के विचारों को प्रभावित करते हैं और पाठ्यक्रम भी फिर वैसा बनता है।

टैगोर के शैक्षिक आधार स्रोतों पर उनके दार्शनिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रभाव पड़ा है। टैगोर के दार्शनिक पक्ष, व्यक्ति, जीव, ईश्वर, जगत् आदि के सम्बन्ध में सोचने का दृष्टिकोण स्पष्ट है। वे आधुनिक आदर्शवादी हैं, मानववाद के पक्षधर हैं। वे बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझते हुए शिक्षा देने के पक्षपाती प्रतीत होते हैं और उनकी सामाजिक मान्यताओं में स्पष्टता है। वे व्यक्ति को समाज का एक अच्छा नागरिक बनाना चाहते हैं और समाजोपयोगी शिक्षा देना चाहते हैं। वे अन्धविश्वासों में विश्वास नहीं करते और वे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पुनरुत्थान में आस्था रखते हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में राज्य के महत्त्व को स्वीकार करते हैं और राज्य का नियन्त्रण शिक्षा पर उस सीमा तक चाहते हैं, जहाँ तक व्यक्ति का व्यक्तित्व नष्ट न हो।

जिस काल में टैगोर का जन्म हुआ था वह भारत की परतन्त्रता और दुर्दशा का काल था। टैगोर ने अपनी रचनाओं में भारत की दुर्दशा का अनेक बार उल्लेख किया है और प्रभु से प्रार्थना की है कि वह भारत की दरिद्रता दूर करें और देश की रक्षा करें।

जून-जुलाई, 1901 में प्रणीत 'नैवेद्य' से विश्वकवि रबीन्द्र का 'त्राण' शीर्षक गीत—

ए दुर्भाय देश हत, हे मंगलमय,
दूर करे दाओ तूमि सर्व तुच्छ भय—
लोकभय, राजभय, मृत्युभय और।
दीनपाण दुर्बलेर ए पाषाणभार,
एइ नित्य अवनति, दण्डे पले-पले
एइ आत्म-अवमान, सन्तरे बाहिरे
एइ दासत्वेर रज्जु, त्रस्त नतशिरे
सहस्रेर पदप्रान्ततले बारम्बार
मनुष्यमर्यादागर्व चिरपरिहार—

ए बृहत् लज्जाराशि चरण-आघाते
चूर्ण करि दूर करो। मंगलप्रभाते
मस्तक तुलिते द्राओ अनन्त आकाशे
उदार आलोक-माझे उमुक्त बातासे

हे मंगलमय। इस अभागे देश से
तुम दूर कर दो सभी तुच्छ भय—
लोकभय, राजभय, मृत्युभय और
दीनप्राण दुर्बल का यह पाषाणभार,
यह चिरकाल से पिसते रहने का कष्ट, निम्नतम स्थिति
यह क्षण-क्षण होने वाली नित्य की अवनति,
यह चतुर्दिक होने वाला आत्मा का अवमान
यह दासता की रज्जु (में आबद्ध) एवं त्रस्त (जीवन)
सहस्रों के पदतल में बारम्बार नतमस्तक होना
मानव मर्यादा के गर्व का यह चिर परिहार—
इस अपार लज्जाराशि को चरण प्रहार से
चूर्ण करके दूर कर दो। मंगलप्रभात में
(हमारे) मस्तक को अनन्त आकाश में उन्नत कर दो
उदार आलोक में उन्मुक्त वायु में।

टैगोर की शिक्षा के उद्देश्य
(AIMS OF EDUCATION ACCORING TO TAGORE)

रबीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचार उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं। शहर में बन्धनग्रस्त जीवन बिताने के कारण वे बच्चों के लिए मुक्त जीवन की आवश्यकता के सम्बन्ध में सचेत हो गये थे। जिन विद्यालयों में उन्होंने छुटपन में शिक्षा पाई थी उनमें कुछ ऐसे विषयों में पढ़ाई की जाती थी जो नीरस एवं भावहीन होती थी। वे प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में बिना किसी बन्धन के मुक्त शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। वे चाहते थे कि हम बालकों को एक ऐसी शिक्षा दें जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो। वे बच्चों के ऊपर थोपी गई शिक्षा के विरुद्ध थे। वे चाहते थे कि एक ऐसी शिक्षा हो कि जिसमें बालक किसी प्रकार का बन्धन महसूस न करे और जैसा चाहे वैसा सीख सके। बन्धनमुक्त शिक्षा से उनका अभिप्राय यह नहीं था कि बालकों को अपने भविष्य के बारे में सोचने के लिए छोड़ दिया जाये। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं था कि बालक पर किसी ऐसी बात को सीखने के लिए जोर दिया जाये जिसे वह नहीं चाहता।

इसलिए वे उस शिक्षा पद्धति के विरोधी हो उठे जिनमें निश्चित विषयों की पढ़ाई निश्चित ढंग से की जाती है। वे स्वशिक्षा पद्धति के समर्थक थे और अनुभव करते थे कि जो शिक्षा उन्हें दी जाती है, उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उनमें यह विश्वास गहराई से घर कर गया था कि शिक्षा बच्चे के व्यक्तित्व का विकास प्रकृति की पृष्ठभूमि में करे। उनका यह विश्वास था कि बच्चा जब प्रकृति से सम्बद्ध रहकर अपनी वृत्तियों का विकास करेगा तभी उसके व्यक्तित्व में पूर्णता आ सकती है। यह आवश्यक है कि प्रकृति का सौन्दर्य अपनी विविधता और वैचित्र्य के साथ बच्चे के मन पर अज्ञात रूप में समा जाये। उसका व्यक्तित्व संध्या की स्निग्ध शान्ति, प्रात:काल की नयी आशा, तारों की जगमगाती हुई शोभा और उगते हुए सूर्य के नये प्रकाश से भरा पूरा होना चाहिए।

टैगोर ने अपने लेखों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है। उन्होंने 'शिक्षा के हेर-फेर' नामक बंगला लेख में छात्रों के दुर्बल स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट की है। वे स्वस्थ शरीर को बहुत महत्त्व देते थे। इस दृष्टि से उन्होंने **शारीरिक विकास** को शिक्षा के एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया है।

उनके अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य **बौद्धिक विकास** होना चाहिए। पुस्तकीय शिक्षा का वे विरोध करते दिखाई पड़ते हैं तथा स्वतन्त्र चिन्तन का समर्थन करते हैं। स्मृति पर अधिक भार न डालने व चिन्तन एवं कल्पना की शक्तियों का विकास करना आवश्यक है।

'शिक्षा समस्या' में वे सच्चे अनुशासन का विश्लेषण करते हुए व्यक्ति के **नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास** पर बल देते हैं। वे युवकों को तपस्या एवं दृढ़ भक्ति की भावना का विकास करने का परामर्श देते हैं। इस प्रकार की भावना तभी सम्भव है जबकि व्यक्ति आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करे और अपनी आत्मा को सभी प्रकार की दासता से मुक्त करे। इस प्रकार टैगोर गुलामी को समाप्त करना आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत आवश्यक समझते थे।

टैगोर एक उच्चकोटि के अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे। उन्होंने पूर्व और पश्चिम का अभूतपूर्व समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनके द्वारा स्थापित 'विश्व-भारती' सच्चे अर्थ में विश्वभारती है। इस दृष्टि से वे शिक्षा द्वारा बालकों में **अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण** का विकास करने में रुचि लेते हुए दिखाई पड़ते हैं।

टैगोर का पाठ्यक्रम
(TAGORE'S CURRICULUM)

टैगोर में देश-प्रेम तथा जन-कल्याण की भावना प्रबल थी। अत: वे व्यक्तियों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास करना चाहते थे। वे संकीर्ण राष्ट्रीयता के समर्थक नहीं थे। वे समस्त मानव जाति के प्रति प्रेम एवं सद्भावना रखने के पक्ष में थे अर्थात् वे विश्व-बन्धुत्व में विश्वास करते थे और शिक्षा द्वारा अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते थे। अत: इस दृष्टि से उन्होंने पाठ्यक्रम में अपने देश की भाषा, संस्कृति तथा सभ्यता के साथ-साथ अन्य देशों की भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया। उनका विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से विभिन्न राष्ट्रों के बीच साझेदारी और सद्भावना स्थापित हो सकेगी। अत: टैगोर पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय विषयों के साथ-साथ मानवता का विकास करने वाले विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान देने के समर्थक थे। शान्ति निकेतन में उनके द्वारा लागू किया गया पाठ्यक्रम संकीर्ण नहीं था। संकीर्णता के टैगोर विरोधी थे, फिर वह चाहे जिस क्षेत्र की संकीर्णता हो। रवीन्द्र बाबू पुस्तकों की अपेक्षा प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने के पक्षपाती थे अर्थात् वह अपनी शिक्षा-प्रणाली में पुस्तकों की भूमिका नगण्य मानते थे। टैगोर ने स्वयं उच्च कोटि की पुस्तकों की रचना की थी किन्तु वे बच्चों को पुस्तकों के बोझ से दूर रखना चाहते थे। बाद में ऊँची कक्षाओं में पुस्तकों का सहारा लिया जाना चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पुस्तकों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रत्येक विषय का क्रमबद्ध ज्ञान, प्रकृति से प्राप्त करना, अव्यावहारिक प्रतीत होता है।

टैगोर ने पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाने का परामर्श दिया है। उनके अनुसार पाठ्यक्रम को इतना व्यापक होना चाहिए कि बालक के जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सके। टैगोर ने किसी निश्चित पाठ्यक्रम की योजना नहीं बनायी। उन्होंने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में सामान्य विचार यत्र-तत्र प्रस्तुत किए हैं और उन्हीं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे सांस्कृतिक विषयों को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे। विश्वभारती में

इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य, प्रकृति अध्ययन आदि की शिक्षा तो दी ही जाती है, साथ ही अभिनय, क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, ड्राइंग, मौलिक रचना, संगीत, नृत्य आदि की भी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध है।

यदि किसी को यह अवसर मिले कि वह शान्ति-निकेतन जाये और विश्वभारती के पाठ्यक्रम के व्यावहारिक रूप को देखे तो उसे यह विश्वास हो जायेगा कि शान्ति-निकेतन शिक्षा-प्रणाली में पाठ्यक्रम विषय-केन्द्रित नहीं। विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ वहाँ देखने को मिलेंगी। ड्राइंग, परिभ्रमण, प्रयोगशाला के कार्य, गायन, नृत्य, प्रातःकालीन प्रार्थना, सरस्वती-यात्राएँ, छात्रों का स्वशासन, खेल-कूद, समाज-सेवा आदि क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अंग की भाँति ही हैं। इसीलिए विश्वभारती के पाठ्यक्रम को अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम ही माना जायेगा। इसका श्रेय टैगोर को ही है।

टैगोर की शिक्षण-विधि
(TAGORE'S METHOD OF TEACHING)

टैगोर बालक की असीम शक्ति एवं जिज्ञासा के प्रति आस्था प्रकट करते हैं। वे बालक की अनन्यता में विश्वास करते हैं और कहते हैं कि प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए।

वे बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देने का समर्थन करते हैं। उनका विचार है कि बालकों में विशेष प्रकार की आदतें डालकर उन आदतों का उन्हें दास न बनाया जाए।

उनका कथन है कि शिक्षण सजीव होना चाहिए। शिक्षण में सजीवता लाने के लिए बालक की रुचियों एवं संवेगों पर ही विधि आधारित हो। यहाँ पर संवेगों पर ध्यान देना चाहिए।

शिक्षण जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के द्वारा दिया जाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि का शिक्षण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ही प्रदान किया जाए। भ्रमण, दृश्य-दर्शन आदि प्रविधियों के द्वारा शिक्षा में यथार्थ दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है।

शिक्षण-विधि का अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त क्रिया-सिद्धान्त है। टैगोर शरीर और मस्तिष्क की शिक्षा के लिए क्रिया को आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार बालक को किसी हस्तकला में अवश्य प्रशिक्षित किया जाए। वे पेड़ पर चढ़ने-कूदने, बिल्ली या कुत्ते के पीछे दौड़ने, फल तोड़ने, हँसने, चिल्लाने, ताली बजाने, अभिनय करने को शिक्षण की आवश्यक प्रविधि या युक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

टैगोर को अधिगम के आधुनिक सिद्धान्तों का पूर्वाभ्यास था। वे मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त रूप से सहमत दिखाई पड़ते हैं तो कुछ की उन्होंने आलोचना भी की है। उनका विचार था कि बालक को सीखने का अवसर प्रदान करना चाहिए। शिक्षण विधि में उन्होंने प्रेम एवं सहानुभूति से ओत-प्रोत वातावरण को महत्त्व दिया। बालक के प्रति सहानुभूति रखने से अनेक सिद्धान्त अपने आप प्रकट हो जाते हैं। टैगोर प्राकृतिक वातावरण में प्राकृतिक सिद्धान्तों द्वारा शिक्षण के समर्थक थे।

वे विभिन्न विषयों—जीव विज्ञान, विज्ञान, खगोल विद्या, भूगर्भ विद्या आदि की शिक्षा प्राकृतिक पर्यावरण में देना चाहते हैं, जिसमें बालक स्वानुभव, रुचि तथा करके सीख सकता है। इस प्रकार वे शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियों का समर्थन करते थे।

छात्र-शिक्षक सम्बन्ध
(PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP)

गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विषय में टैगोर के विचार अनुकरणीय हैं। टैगोर का विश्वास व्यक्ति के गौरव पर था इसलिए वे स्वभावतः शिक्षक के व्यक्तित्व पर सबसे अधिक ध्यान दिया करते थे। शिक्षा समस्या निबन्ध में टैगोर कहते हैं कि सबसे पहला काम है एक यथार्थ शिक्षक को ढूँढ़ निकालना, जब यह काम हो जाये, पाठ्यक्रम सूची, शिक्षण पद्धति और अनुशासन सम्बन्धी बातें आसानी से तय की जा सकती हैं। किसी शिक्षक का प्रत्यक्ष उदाहरण उसके विचारों, विश्वासों और यहाँ तक कि उसके ज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। टैगोर के मतानुसार केवल पुस्तकगत ज्ञान भारस्वरूप होता है, पर जब वही सच्ची लगन और आस्था से आलोकित हो उठता है, तब आने वाली अनगिनत पीढ़ियों को प्रकाश और ताप देता है। उनका कथन था कि ज्ञान प्राप्त करना या सीखना एक निरन्तर चलती रहने वाली प्रक्रिया है और वह तभी यथार्थ बन पाता है, जब

शिक्षक और शिक्षा प्राप्त करने वालों के मन एक-दूसरे से मिल जायें। उन्होंने शिक्षा की तुलना एक दीये से दूसरे दीये को जलाते चले जाने से की है और यह कहा है कि यथार्थ शिक्षक दीये की तरह होता है, जहाँ शिक्षक ने सीखना और अध्ययन करना छोड़ दिया, वहाँ वह बुझ जायेगा।

छात्र और शिक्षक का सम्बन्ध औपचारिक नहीं होना चाहिए। टैगोर ने शिक्षक के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं वह उनके प्रकृतिवादी दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। आदर्शवादी विचारक होने पर भी वह गुरु को 'गुरुर्ब्रह्म, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरा' का उच्च स्थान न देकर उसे छात्र के पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करते हैं। छात्र-शिक्षक का सम्बन्ध ठोस धरातल पर होना चाहिए। यह सम्बन्ध पिता-पुत्र के समान घनिष्ठ होना चाहिए। दोनों ही शिक्षा की साधना में तत्पर हैं। दोनों ही ज्ञान के पथिक हैं। एक इस पथ में कुछ आगे है तो दूसरा थोड़ा पीछे है।

रवि बाबू आवासीय विद्यालयों का समर्थन करते हैं। उन्होंने बताया है कि शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति केवल निवास योग्य विद्यालयों में हो सकती है। वहाँ बच्चों को प्रतिदिन प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में रखा जा सकता है। वहाँ वे लगन वाले शिक्षकों के व्यक्तिगत सम्पर्क में रहकर राष्ट्रीय परम्पराओं को अपना सकते हैं। इन आदर्शों को मूर्त रूप देने और बच्चे के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं में सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से ही उन्होंने आवासीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की।

टैगोर की शैक्षिक विचारधारा की कुछ विशेषताएँ

टैगोर ने अपने लेखों में तत्कालीन शिक्षण-प्रणाली की कटु आलोचना की और इसको काल्पनिक, विदेशी, पुस्तकीय एवं अनुपयुक्त कहा। वे शिक्षा को भारतीय संस्कृति पर आधारित करना चाहते थे और शिक्षा के माध्यम के रूप में उन्होंने मातृभाषा का समर्थन किया है। संगीत, अभिनय, कला आदि पर विशेष बल दिया। शिक्षा के क्षेत्र में वे भारतीय विचारधारा का समर्थन करते हुए भी मानवतावादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास करना चाहते थे। उन्होंने प्रेम एवं सार्वभौमिकता का पाठ पढ़ाया और इन्हें उच्च शैक्षिक मूल्यों के रूप में स्वीकार किया।

टैगोर का सम्मान एक महाकवि के रूप में है। वे गीताञ्जलि-रचयिता एवं नोबेल पुरस्कार विजेता के रूप में भुलाए नहीं जा सकते। वे एक दार्शनिक थे। सत्यम्, शिवम् एवं अद्वैतम् के व्याख्याकार के रूप में भी वे हमारे सामने आते हैं। किन्तु इस महान् योगदान के अतिरिक्त भारत के लिए इनका एक और योगदान है जिसे भूलना भारतीय इतिहास के सत्य को ही भुला देना होगा। टैगोर एक शिक्षक के रूप में भी हमारे समक्ष आते हैं। वे 'गुरुदेव' थे। गुरुदेव के रूप में उनका महान् योगदान शान्ति निकेतन प्रणाली के रूप में है। भारतीय शिक्षा में यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। गुरुदेव के रूप में टैगोर तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। उन्होंने शिक्षा के कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और बाद में उन्हें अपने शान्ति निकेतन प्रयोग में व्यवहृत किया। विश्व भारती उनकी शैक्षिक विचारधारा का व्यावहारिक रूप है। यह टैगोर के गुरुदेवत्व का प्रतीक है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि टैगोर शिक्षा के क्षेत्र में भी कोरे सिद्धान्तवादी न होकर व्यावहारिक शिक्षाशास्त्री थे। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की बात करके, अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा पर बल देकर, वैदिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षा की बात करके तथा अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम पर बल देकर वे अपने समय की शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे।

विश्वभारती के उद्देश्य
(AIMS OF VISHVABHARATI)

मानव जाति की एकता सम्पादन के हेतु मैंने विश्वभारती की स्थापना की है। ऐसे गुरुतर कार्य का भार सम्हालना मेरे लिए कठिन था। किन्तु मैंने यह अनुभव किया कि जब तक एक केन्द्र बनाकर कार्य प्रारम्भ न किया जाएगा तब तक अपने देशवासियों के पास जाकर सहायता माँगना सम्भव न होगा। कई वर्षों तक शान्ति निकेतन का विद्यालय मेरे लिए भार स्वरूप था। यह दूसरा बोझ भी आकर उसमें मिल गया है। यह उत्तरदायित्व अकेले मनुष्य के लिए बहुत ज्यादा है। इस कारण मैंने अपनी संस्था जनता के हाथों में सौंप दी है। कानून के अनुसार उसकी रजिस्ट्री भी हो चुकी है और उसकी एक विशेष व्यवस्था भी है।

भविष्य में दृष्टि डालते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भव है कि शान्ति निकेतन भारतवर्ष के लिए एक मानसिक द्वार हो जाए और इस देश का संसार के अन्य देशों से मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सम्मिलन कर दे। वर्तमान भारत में कोई एक भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ कि पृथ्वी के अन्य भागों से आकर लोग जान सकें कि पूर्व का आदर्श क्या है और मानव जाति की सभ्यता के इतिहास में भारत ने क्या योग दिया है। विशेषकर आन्तरिक निर्बलता और विदेशियों द्वारा पराजित होने की ऐतिहासिक अवस्थाओं से उत्पन्न हुए अनेक कारणों से भारतवर्ष की एकता (केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, किन्तु आत्मा और मन से भी) नष्ट हो गई है। मानसिक अलगाव बहुत ज्यादा खराबी करता रहा है। क्योंकि हमारे विद्यार्थियों को अपनी विद्याओं और कलाओं की बहुत थोड़ी शिक्षा भी मिलती रही है और अभी तक भी वे मौलिकता से हीन हैं। आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के दिनों में यहाँ के बहुत थोड़े विद्वान् सर्वोच्च श्रेणी तक पहुँच सके हैं। इस शिक्षा का ऐसा कुछ परिणाम हुआ है जिससे कि यह स्पष्ट हो गया कि उसमें कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं। उससे विचार स्वातन्त्र्य का आविर्भाव नहीं हुआ। बुद्धि में हम यदि निरुत्साहित हो गये हैं। विदेशियों ने जो बताया हमारे विद्यार्थी उसी को सावधानी से संचित करते रहे। वे इसी बात से सन्तुष्ट थे कि बाहर के लोग उनके लिए विचार कर रहे हैं। मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि हमारे स्वभाव की कोई अन्तर्गत न्यूनता के कारण यह दशा नहीं हुई है किन्तु उसका असली कारण यह है कि जो ज्ञान हम लाभ करते हैं वह अविचारों का होता है। जो हम रटकर प्राप्त करते हैं, वह ज्ञान प्रतिभाप्रद विचारों का नहीं होता। मुझे अच्छी तरह याद है कि मुझे स्कूल के विषयों से कितनी घृणा थी और बचपन में मैं कितनी उदासीनता से उन्हें पढ़ता रहा और मुझे यह भी भली-भाँति याद है कि मैं किस उत्साह के साथ बंगाल के नव प्रकाशित वैष्णव साहित्य को पढ़ता था। इस साहित्य द्वारा मुझे जो कुछ भी मिल सकता था उसे अध्ययन करने का मुझे काफी अवकाश था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ज्ञान जो कि मैंने बिना किसी की सहायता से उपार्जित किया मेरे लिए अमूल्य सिद्ध हुआ है।

सौभाग्य से मेरे एक ज्येष्ठ भ्राता का यह दृढ़ मत था कि बालक को विदेशी माध्यम से शिक्षा नहीं मिलनी चाहिए। इस वास्ते जब तक मैं बड़ा नहीं हो गया और बंगला साहित्य में खूब दक्ष न हो गया तब तक मेरा अंग्रेजी पढ़ना शुरू नहीं हुआ। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा मुझे देशी भाषा द्वारा ही दी गई थी। अंग्रेजी पढ़ने से पहले ही मुझे बंगला साहित्य की कुछ उत्तम पुस्तकें पढ़ने और समझने का अवसर मिल गया था। अपने आपके अनुभव से मैं भली-भाँति जानता हूँ कि मेरे संवर्धन और मानसिक विकास में इसका कितना योग रहा है।

इस देश के अवरुद्ध मानसिक जीवन के संवर्धन के लिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हमारे विद्यार्थी अपनी विद्याओं और भाषाओं से घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लें और इसके साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता में जो सर्वोत्तम भाग है उसे भी सुचारु रूप से समझ लें। अपनी भाषाओं और संस्कार के माध्यम से उन्हें अपने मत स्थिर करने का अवकाश मिलना चाहिए। यही एक मार्ग है जिससे वे पाश्चात्य ज्ञान से लाभ उठा सकते हैं।

इन सब बातों से आप इस विद्यालय के स्थापन का प्रारम्भिक हेतु समझ सकेंगे। वह यह था कि यहाँ पर पूर्व और पश्चिम के लोग समान भाव से मिल सकें। भारतीय संस्कृति के विद्वान् और सिंहल के बौद्ध भिक्षु इकट्ठे हो ही चुके हैं। हमारे साथ बंगाल के नवप्रतिष्ठित कला आन्दोलन के कुछ प्रवीण नवयुवक भी हैं। बंगला की कला को यथार्थ रूप में दिग्दर्शन करने के लिए वे महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन कर रहे हैं। अब वह दिन नहीं रहे जबकि बंगाल की कला यूरोप का अनुकरण करती थी। हमारे पास कुछ आचार्य ऐसे हैं जो कि अपने देश की गानविद्या में अति निपुण हैं। थोड़े ही दिनों में हम में थोड़े से यूरोपीय गानविद्या के पण्डित हो जाएँगे। उनकी सहायता से हम पूर्वीय और पाश्चात्य गानविद्या का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे। थोड़े ही दिन हुए जब कि हमने कृषि विभाग भी खोल दिया है। इसका खोलना इस वास्ते हो सका कि एक नवयुवक अंग्रेज विद्वान् ने हमारे कार्यकर्त्ताओं के साथ अपनी सेवा सहर्ष अर्पित की है। वे केम्ब्रिज (Cambridge) विश्वविद्यालय के बी. ए. हैं और उन्होंने कार्नल विद्यालय अमेरिका से कृषि में दक्षता प्राप्त की है। आपने कार्य आरम्भ कर दिया है। साथ ही साथ हम समाज सेवा और सहकारिता (Cooperation) का कार्य बढ़ाना चाहते हैं। एक अमेरिकन महिला कृषि और ग्राम सुधार का कार्य करने के लिए खुद आगे आई है। हमारे यहाँ शिक्षित हिन्दुस्तानी समाज सेवक नवयुवक भी मौजूद हैं। मुझे पूरी आशा है कि पूर्वी और पश्चिमी अध्यापकों

तथा विद्यार्थियों की सहायता से हम अपनी शान्ति निकेतन की संस्था को एक जीवित विश्वविद्यालय के रूप में परिणत कर सकेंगे। चारों ओर फैलने के लिए इनमें काफी सम्मान रहेगा, यह सच्ची नींव पर स्थिर होगा और भविष्य की आकांक्षाओं के साथ यह तन्मय हो जाएगा।

एक बात मैं अपने पाठकों को बता देना चाहता हूँ और वह यह है कि जैसा शिक्षाक्रम आजकल के विद्यालयों में पाया जाता है, यदि इस प्रकार का क्रम यहाँ पाने की वे आशा करेंगे तो उन्हें निराश होना पड़ेगा। विश्वभारती के सबसे प्रधान अंग वे विद्यार्थी हैं जो कि प्राप्त सामग्रियों की सहायता से अपना अध्ययन आप करते रहते हैं। हम उन्हें केवल उत्तम पुस्तकालय का अवकाश तथा आपस के पूर्ण सहयोग की सुविधा उपस्थित कर देते हैं। इनकी सहायता से उन्हें अपना अध्ययन आप ही करना पड़ता है। अच्छी शिक्षा प्राप्त उन्नत मस्तिष्क शक्ति-युक्त तथा विद्यार्जन के सच्चे इच्छुक जो विद्यार्थी यहाँ आते हैं उनका यह कर्तव्य होता है कि अपनी इच्छानुसार विद्वानों से आवश्यक सहायता ले लें। किन्तु जिन्हें अस्वाभाविक रीति से दूसरे के द्वारा, अपने ऊपर विद्या लादने का अभ्यास है और जो हमेशा शिक्षकों की देख-रेख तथा उनके द्वारा बार-बार टोके जाना आवश्यक समझते हैं, ऐसे लोगों के लिए विश्वभारती नहीं है।

हमारे भारतवर्ष ही में एक ऐसा भी समय था जब यहाँ इस प्रकार का विश्वविद्यालय वर्तमान था। यह विद्यालय जनप्रिय भी था और इसमें विदेशी विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए काफी सुविधाएँ भी थीं। जहाँ तक ऐतिहासिक प्रमाणों से पता लगता है यही सिद्ध होता है कि नालन्दा का विश्वविद्यालय भारतवासियों ही के द्वारा संचालित था। इसके चलाने के लिए मानसिक तथा पार्थिव सब प्रकार की सामग्री इस देश के भिन्न-भिन्न भागों से एकत्रित की जाती थी। भारतीय इतिहास के उस काल के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय राष्ट्रीय जीवन का अंश बन रहा था। हम उस काल के बचे-खुचे अंश आजकल के भग्नावशेषों में पा सकते हैं और उससे हमें उस विद्यालय की महत्ता का कुछ पता लग सकता है।

हमें इस समय में भी उसी प्रकार के एक विद्यालय की आवश्यकता है जो कि हमारे विद्यार्थियों के हृदयों को नवीन उत्साह से शक्तिमय कर दे तथा उसमें अपने राष्ट्र का विशेषत्व विकसित कर दे जिसके कारण वे अपनी मातृभूमि में अपनी जड़ों को दृढ़रूप से स्थिर समझ सकें। जब हमारा इस प्रकार का शक्तिमय और उत्पादक मस्तिष्क हो जाएगा तभी हम बिना किसी कुपरिणाम की आशंका के अपनी विद्या के अतिरिक्त विदेशी विद्याओं को भी उनके सच्चे रूप से हृदयंगम कर सकेंगे।

यही विश्वभारती का कार्यक्रम है। इसके दो विभेद हैं। पहले तो भारत को अपनी विद्या का यथार्थ रूप हृदयंगम करना है जिस प्रकार कि यूरोप ने, अपनी मातृभाषाओं में अपनी सब विद्याओं (Culture) के केन्द्रित होने के कारण, उन्हें हृदयंगम कर लिया है। विश्वभारती में पूर्व की विद्याओं को उसी प्रकार केन्द्रीभूत करना है जिस प्रकार कि यूरोप की विद्याएँ एक जगह केन्द्रित हैं। जब पूर्व अपनी मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार केन्द्रीभूत करने का अनुभव प्राप्त कर लेगा, तभी वह बराबरी के दर्जे पर यूरोप के सामने खड़ा होकर उससे मिल सकता है। दूसरी बात जो विश्वभारती में करना है वह यह है कि विश्वभारती को हमें पूर्व और पश्चिम का जीवित संगम-स्थल बनाना है। दोनों गोलार्द्धों में जीवित सम्बन्ध स्थापित करना है। उस सम्बन्ध का केन्द्र ऐसे ही स्थान को बनाना है जहाँ कि मन शक्तिशाली और कर्मठ हो। यदि इस प्रकार का जीवित सम्बन्ध स्थापित हो गया तो उससे केवल भारत ही को लाभ न पहुँचेगा बल्कि पश्चिम को भी अनन्त लाभ होगा। इससे पूर्व और पश्चिम आपस में एक-दूसरे का आदर करना सीखेंगे।

शान्ति-निकेतन
(SHANTI NIKETAN)

शान्ति-निकेतन कलकत्ता के उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग सौ मील दूर है। यह स्थान बर्दवान-साहबगंज लूप लाइन पर बोलपुर स्टेशन से डेढ़ मील दूर है। शान्ति-निकेतन की स्थापना गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ने की थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ जी ब्रह्मसमाजी थे और अपनी साधना के लिए एक शान्त स्थान की खोज में थे। यह स्थान उस समय ऊसर था और इसका चुनाव करने के बाद उन्होंने इस स्थान पर अनेक वृक्ष लगाए। आज तो इस स्थान पर आम्र कुंजों की छटा निराली है और चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पड़ती है। इस स्थान पर अपार शान्ति मिलती है इसीलिए इसका नाम शान्ति-निकेतन रखा गया।

रबीन्द्रनाथ टैगोर जब ग्यारह वर्ष के थे तो सर्वप्रथम अपने पिता के साथ शान्ति-निकेतन गये। अपनी प्रथम अनुभूति के विषय में उन्होंने लिखा है कि यदि मुझे बाल्यकाल में यह सुयोग नहीं मिलता तो मेरा जीवन नितान्त असम्पूर्ण-सा रह जाता। शान्ति-निकेतन की प्राकृतिक छवि ने बालक रबीन्द्र का ध्यान अत्यधिक आकृष्ट कर लिया था।

टैगोर अपनी जमींदारी की देखभाल के लिए गाँवों में जाते तो ग्रामीणों के दुःख-दर्द सुनते और उनकी पीड़ा की स्वयं अनुभूति करते। अज्ञान के पाश में जकड़ी हुई मानवता को देखकर टैगोर का हृदय विकल हो उठा और वे कुछ करने के लिए छटपटाने लगे। सन् 1901 में उन्होंने शान्ति-निकेतन की नींव रख दी। उस समय इसमें केवल पाँच छात्र थे।

गुरुदेव टैगोर ने अब अपना ध्यान शिक्षा में सुधार की ओर लगाया। वे प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की विशेषताओं की ओर आकृष्ट थे और वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति से उसका समन्वय करना चाहते थे। उन्होंने अपने विद्यालय में विद्यार्थी को पूर्ण स्वतन्त्रता दी। उनका विचार था कि छात्र को वही काम करने को कहा जाए जिसमें उसे आनन्द आये। जब तक छात्र अपनी इच्छा से कार्य नहीं करता तब तक उसे आनन्द नहीं मिलता। अध्यापक का कार्य केवल प्रेरणा देना होना चाहिए। प्रकृति के मध्य में स्थापित शान्ति-निकेतन विद्यालय में वे अपने विचारों को मूर्त रूप देने लगे। गुरु का निर्देश पाते ही छात्र वृक्ष के नीचे, वृक्ष की शाखा पर या आम्र कुंज में अपनी इच्छानुसार पढ़ाई करता। गुरु और शिष्य वहाँ एक परिवार की तरह रह रहे थे।

पाँच छात्रों से संख्या बढ़ते-बढ़ते सहस्त्रों तक पहुँच गई। अतः आर्थिक समस्या भी बढ़ती गई। गुरुदेव के सामने भी आर्थिक संकट से होकर विद्यालय गुजरा। गुरुदेव ने समय-समय पर विद्यालय की सहायता के लिए विभिन्न उपाय किये। नोबेल पुरस्कार की अपनी सारी धनराशि को उन्होंने इसी में लगा दिया। विदेशों की यात्रा की और शान्ति-निकेतन के प्रति समाज की सहानुभूति अर्जित की।

अब उनका ध्यान उच्च शिक्षा की ओर गया। उच्च शिक्षा को वे आध्यात्मिक उन्नति का साधन मानते थे। विश्वविद्यालयों की यान्त्रिकता से उन्हें ग्लानि थी। वे विश्वविद्यालयों को ज्ञान का केन्द्र बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने 6 मई, 1922 को शान्ति-निकेतन में ही 'विश्वभारती' की स्थापना की। विश्वभारती की स्थापना के उन्होंने निम्नलिखित तीन उद्देश्य रखे—

(1) पूर्व और पश्चिम की भिन्न संस्कृतियों को उनकी मौलिक एकता के आधार पर निकट लाना।

(2) इसी एकता के आधार पर पश्चिम के विज्ञान और संस्कृति के निकट पहुँचना।

(3) गाँवों के जीवन में सुख-समृद्धि लाने के लिए ग्रामीण पुनर्रचना के संस्थान की स्थापना करना।

विश्वभारती की स्थापना द्वारा टैगोर मानव में ज्ञान की ज्योति जगाना चाहते थे। विभिन्न स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करना, मनुष्य के मन का अध्ययन करना, एक-दूसरे से सहयोग बढ़ाना, पारस्परिक जानकारी प्राप्त करना एवं पूर्वी तथा पश्चिमी संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करना विश्वभारती में छात्रों एवं शिक्षकों के प्रमुख कार्य थे।

विश्वभारती में सहशिक्षा है। छात्रों एवं छात्राओं के रहने की व्यवस्था वहीं पर है। जाति, सम्प्रदाय, रूप, रंग के आधार पर कोई भेद नहीं है। सभी को मानव के रूप में देखा जाता है। भारतीय संसद ने सन् 1951 में अपने 29वें अधिनियम द्वारा विश्वभारती को एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्रदान की है। तब से यह एक सावास विश्वविद्यालय के रूप में कार्य कर रहा है जिसमें देश-विदेश से अनेक छात्र आकर उच्च अध्ययन करते हैं। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रधानमन्त्री होते हैं।

विश्वभारती में एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें विभिन्न भाषाओं की लगभग दो लाख पुस्तकें हैं। टैगोर के जीवन तथा उनकी कृतियों के अध्ययन की सुविधा के लिए एक 'रबीन्द्र सदन' की स्थापना सन् 1942 में की गई है जो टैगोर स्मारक संग्रहालय के रूप में है और इसमें टैगोर लिखित सभी पुस्तकें, सम्पादित पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य सामग्रियाँ हैं। टैगोर के विषय में जो कुछ लिखा गया है, उनके पत्र और उनके नाम पत्र, उनकी पाण्डुलिपियाँ तथा सन् 1912 से समाचार-पत्रों की टैगोर विषयक सूचनाओं की कतरनें भी संगृहीत हैं। टैगोर द्वारा गाये गये गीतों के ध्वनि रिकार्ड, उनके द्वारा बनाये गये चित्र, टैगोर के विभिन्न चित्र तथा टैगोर की व्यक्तिगत साज-सज्जा एवं उनके व्यक्तिगत सामान भी रबीन्द्र सदन में सुरक्षित हैं।

विश्वभारती में अनेक विभाग हैं जिन्हें भवन कहा जाता है। ये भवन निम्नलिखित हैं—

1. **पाठ भवन**—स्कूल विभाग है। मैट्रिक तक की शिक्षा का प्रबन्ध है। शिक्षा का माध्यम बंगला है।

2. **शिक्षा भवन**—इण्टर तक की शिक्षा का विभाग। बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, तर्कशास्त्र, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल का शिक्षण।

3. **विद्या भवन**—बी. ए. आनर्स का तीन वर्ष का पाठ्यक्रम, दो वर्ष का एम. ए. का पाठ्यक्रम और पी-एच. डी. के लिए शोध की व्यवस्था।

4. **विनय भवन**—अध्यापक प्रशिक्षण विभाग। बी. एड., एम. एड. एवं शिक्षाशास्त्र में पी-एच. डी. की व्यवस्था।

5. **कला भवन**—कला तथा शिल्प का दो वर्ष का कोर्स। मैट्रिक के बाद चार वर्ष का डिप्लोमा कोर्स। दो वर्षीय सर्टीफिकेट कोर्स में केवल स्त्रियों का प्रवेश। इस भवन में अपना संग्रहालय, पुस्तकालय एवं एक बड़ा हॉल है।

6. **संगीत भवन**—संगीत और नृत्य विभाग। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था है।

7. **चीन भवन**—चीनी भाषा का विशाल पुस्तकालय है। चीनियों को भारत के सम्बन्ध में एवं भारतीयों को चीनियों के सम्बन्ध में जानकारी देने की व्यवस्था है।

8. **हिन्दी भवन**—हिन्दी भाषा और साहित्य के शिक्षण की व्यवस्था है।

9. **श्री निकेतन**—ग्राम्य-जीवन की समस्याओं के अध्ययन की व्यवस्था है।

10. **शिल्प-सदन**—शिल्प में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम हैं।

शान्ति-निकेतन राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से भरपूर रहा है। स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जब अफ्रीका से आये तो कुछ समय बाद शान्ति-निकेतन गये। अपने शान्ति-निकेतन-प्रवास का बड़ा रोचक वर्णन गाँधीजी ने अपनी आत्म-कथा में दिया है जिसका सम्बद्ध अंश यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा। **गाँधीजी** लिखते हैं—

''राजकोट से मैं शान्ति-निकेतन गया। वहाँ शान्ति-निकेतन के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने मुझे अपने प्रेम से नहलाया। स्वागत की विधि में सादगी, कला और प्रेम का सुन्दर मिश्रण था।''

यहाँ मेरी मण्डली को अलग से ठहराया गया था। मगनलाल गाँधी उस मण्डली को सँभाल रहे थे और फीनिक्स आश्रम के सब नियमों का पालन सूक्ष्मता से करते-कराते थे। उन्होंने अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग की बदौलत शान्ति-निकेतन में अपनी सुगन्ध फैलाई थी।

अपने स्वभाव के अनुसार मैं विद्यार्थियों और शिक्षकों में घुल-मिल गया और स्व-परिश्रम के विषय में चर्चा करने लगा। मैंने वहाँ के शिक्षकों के सामने अपनी यह बात रखी कि वैतनिक रसोइयों के बदले शिक्षक और विद्यार्थी अपनी रसोई स्वयं बना लें तो अच्छा हो। कुछ लोगों को यह प्रयोग बहुत अच्छा लगा। नई चीज, फिर वह कैसी भी क्यों न हो, बालकों को तो अच्छी लगती ही है। इस न्याय से यह चीज भी उन्हें अच्छी लगी और प्रयोग शुरू हुआ। जब कविश्री के सामने यह बात रखी गई तो उन्होंने अपनी यह सम्मति दी कि यदि शिक्षक अनुकूल हों, तो स्वयं उन्हें तो यह प्रयोग अवश्य पसन्द होगा। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा—इसमें स्वराज्य की चाबी मौजूद है।

लेकिन मेहनत के इस काम को सवा सौ विद्यार्थी और शिक्षक भी एकदम नहीं अपना सकते थे। अतएव रोज चर्चा होती थी। कुछ लोग थक जाते थे।

आखिर कुछ कारणों से यह प्रयोग बन्द हो गया। मेरा विश्वास यह है कि इस जगद्-विख्यात संस्था ने थोड़े समय के लिए भी इस प्रयोग को अपनाकर कुछ खोया नहीं। मैं शान्ति-निकेतन में कुछ समय रहने का इरादा रखता था, किन्तु विधाता जबरदस्ती घसीट कर ले गया। मैं मुश्किल से एक हफ्ता वहाँ रहा होऊँगा कि इतने में पूना से गोखले के अवसान का तार मिला। शान्ति-निकेतन शोक में डूब गया। सब मेरे पास संवेदना के लिए आये। मन्दिर में विशेष सभा की गई। मैं उसी दिन पूना के लिए रवाना हुआ। पत्नी और मगनलाल को मैंने अपने साथ लिया। बाकी सब शान्ति-निकेतन में रहे।''

अभ्यास-प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. टैगोर के जीवन-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
2. टैगोर के शिक्षा-दर्शन की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. रबीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा के क्या उद्देश्य हैं ?
4. टैगोर के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
5. शिक्षा के क्षेत्र में टैगोर के प्रमुख योगदान की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (अ) विश्वभारती।
   (ब) टैगोर का पाठ्यक्रम।
   (स) टैगोर के अनुसार शिक्षण-विधि।
2. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—
   (अ) टैगोर परम पुरुष में पूर्ण आस्था रखते थे।
   (ब) राष्ट्रीय सर्जन व सामाजिक सुधार में टैगोर गाँवों को प्रमुखता देते थे।
   (स) टैगोर उच्च कोटि के अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे।
   (द) गुरुदेव के रूप में टैगोर शिक्षा-प्रणाली से अत्यन्त असन्तुष्ट थे।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. टैगोर किस पुरस्कार के आदाता थे ?
   (अ) ज्ञानपीठ पुरस्कार
   (ब) नोबेल पुरस्कार
   (स) भटनागर पुरस्कार
   (द) इन्दिरा गाँधी पुरस्कार।
   उत्तर—(ब)
2. विश्वभारती क्या है ?
   (अ) एक कॉलेज
   (ब) एक डीम्ड विश्वविद्यालय
   (स) एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय
   (द) एक राज्य विश्वविद्यालय।
   उत्तर—(स)

●